नासिका 13. आँख का मण्डल 14. भौहों का मध्य भाग 15. ललाट 16. मस्तक का मूल भाग 17. घुटने का मूल भाग 18. हाथों का मूल भाग।

6. **धारणा** :

मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/134

अतः यमादि के द्वारा मन को धारण करना धारणा कहलाता है। इसके द्वारा मनुष्य संसार सागर रूपी समुद्र को पार करने में सक्षम हो जाता है। इस उपनिषद् में शरीर में पंचतत्वों के स्थान का भी वर्णन किया गया है।'' जो इस प्रकार है :

पृथ्वी तत्व : पैरों से लेकर घुटनों तक का स्थान।

जल तत्व : घुटनों से लेकर कमर तक का भाग।

अग्नि तत्व : कटि प्रदेश के मध्य में।

वायु : नाभि से नासिका तक का भाग।

आकाष तत्व : नासिका के ब्रह्मरन्ध्र तक का भाग।

7. **ध्यान** : योगासन पर आरूढ़ होकर हृदय क्षेत्र में हृदय की विशेष आकृति की चिन्तन करते हुए शरीर को स्थिर कर दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर कर फिर जिह्वा को तालु से स्पर्श करके दातों से स्पर्श कराते हुए काया को ऊँचा करके समाहित होकर बैठे। तथा आत्मबुद्धि द्वारा इन्द्रियों का संयमन करके पारब्रह्म परमात्मा के वासुदेव स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

8. **समाधि** :

जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि। अहमेव परंब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः। ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं व्रजेत्।।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/161–162

जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पष्चात् 'मैं ब्रह्म हूँ' इस अवस्था तक पहुँच जाना ही समाधि कहलाती है। इस अवस्था में सभी प्रकार की वृत्तियों और इच्छाओं का समापन हो जाता है। पारब्रह्म को प्राप्त योगी पुनः इस नष्वर जगत में नहीं आता है।

5. योगतत्त्वोपनिषद्

योगतत्त्वोपनिषद् में योग विषय के विविध उपादानों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। इस उपनिषद् में पितामह ब्रह्म के प्रति भगवान विष्णु ने योग विषय के गूढ़ तत्वों का निरूपण किया है। भगवान विष्णु द्वारा

कैवल्य रूपी परमपद की प्राप्ति हेतु योग मार्ग को ही श्रेष्ठ साधन बताया गया है। योग के चार प्रकार मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग हैं। जिनके क्रम में चार अवस्थायें क्रमशः आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था मानी गयी है।

योग साधना हेतु उचित आहार विहार, योग सिद्धि के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए विषय को पूर्णतः प्रदान की गयी है। इस उपनिषद् के अनुसार मोक्ष के अभिलाषी को ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ अभ्यास करना चाहिए।

योग विहीन ज्ञान मोक्ष प्रदायक कैसे हो सकता है? ज्ञान रहित योग से भी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। अतः मोक्ष इच्छा रखने वाले को ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ अभ्यास करना चाहिए।

ज्ञान : जिसके द्वारा स्वयं के स्वरूप का ज्ञान हो और कैवल्य पद, परम पद, निष्कल, निर्मल, सत्–चिद्, आनन्द स्वरूप, उत्त्पत्ति, स्थित, संहार और स्फुरण का ज्ञान हो, वही वास्विक ज्ञान है।

योग : इसके अनेक भेद है, जैसे मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग। इन चार योगों की चार अवस्थाएं चार क्रमशः आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था हैं।

1. **मन्त्रयोग** : मातृका आदि से युक्त मंत्र का जप मंत्रयोग कहलाता है। जो साधक इस प्रकार से 12 वर्ष तक जप करता है वह अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार का योग अल्प बुद्धि वाले साधक करते हैं तथा ऐसे साधक अधम कोटि के माने जाते हैं।
2. **लययोग** : ''चित्त का लय ही लययोग है। यह करोड़ों प्रकार का बतलाया गया है। साधक को उठते, बैठते, चलते–फिरते, शयन करते, भोजनादि के समय कला रहित परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए।
3. **हठयोग** : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को अष्टांगयोग कहते हैं। यहां अष्टांगयोग की चर्चा हठयोग के अन्तर्गत करने से स्पष्ट होता है कि यह उपनिषद् हठयोग के आठ अंग मानती है।
    1. **यम** : इस उपनिषद् में यमों में 'सूक्ष्म आहार' को प्रमुख माना गया है।
    2. **नियम** : 'अंहिसा' प्रधान नियम है।
    3. **आसन** : सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन ये चार आसन ही प्रमुख आसन है।

    योग मार्ग के प्रारम्भिक विघ्न : अलस्य, अपनी बड़ाई, धूर्तपन की बातें, मन्त्रादि का साधन, धातु (धन), स्त्री, चंचलता आदि योग साधना की प्रारम्भिक बाधाएं है।

4. **प्राणायाम** : इस उपनिषद् में साधक को पद्मासन में बैठकर प्राणायाम करने का परामर्श दिया गया है। इसके अभ्यास हेतु साधक को एक छोटी सी कुटिया बनाकर, जो छोटे द्वार से युक्त तथा बिना छिद्र वाली विनिर्मित कर लेनी चाहिए। इसके बाद उसे गाय के गोबर से लीप कर खटमल, मच्छर, मकड़ी आदि जीवों से रहित कर स्वच्छ और सुन्दर कर लेना चाहिए। इष्ट देवता को प्रणाम कर दायें हाथ के अँगूठे से पिंगला (दायीं नासिका) नाड़ी को बन्द बायीं नासिका से धीरे–धीरे वायु को खींचे तथा उसे सामर्थ्य अनुसार रोककर कुम्भक करें। तदोपरान्त पिंगला नाड़ी से उस वायु को सामान्य गति से निष्कासित कर पुनः पिंगला से पूरक करें। षक्ति अनुसार कुम्भक करके पुनः दूसरी नासिका से रेचक करें। इस प्रकार जिस नासिका से रेचक करें पुनः उसी नासिका से पूरक कर कुम्भक करें तथा दूसरी नासिका से निष्कासित कर दें। सामान्यतः मात्रा की गणना से पूरक, कुम्भक और रेचक की अवधि का उल्लेख योग के ग्रन्थों में मिलता हैं। इस उपनिषद् में मात्रा का परिमाण बताते हुए कहा गया हैं कि :

जानु प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम् अंगुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रा परिगीयते

योगतत्वोपनिषद् 40

अर्थात् सहज सामान्य गति से जानु की प्रदक्षिणा करके एक चुटकी बजाए, इतने समय को एक मात्रा कहा जाता है। आगे पूरक, कुम्भक और रेचक के अनुपात को बताते हुए कहा गया है कि :

इडया वायुमारोप्य शनैः षोडशमात्रया। कुम्भयेत्पूरितं पश्चाच्चतुष्टया तु मात्रया।
रेचयेत्पिंगलानाडया द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः। पुनः पिंगलयापूर्य पूर्ववत्सुसमाहितः।।

योगतत्वोपनिषद् 41–42

अर्थात् 'सर्व प्रथम इड़ा नाड़ी से 16 मात्रा तक वायु को धारण करे, तदोपरान्त चौसठ मात्रा तक कुम्भक करें उसके बाद 32 मात्रा तक पिंगला से रेचक करें। पुनः पिंगला से ही पूरक करके पूर्व की भाँति सभी क्रम सम्पन्न करें।

इस उपनिषद् में प्रातः, मध्यान्ह, सांय और अर्धरात्रि अर्थात् चार बार प्राणायाम के अभ्यास का परामर्ष दिया गया है, जिसमें क्रमषः 80 मात्रा की संख्या तक कुम्भक को ले जाने का परामर्ष है। इस प्रकार से अभ्यास करने से 3 माह में नाड़ियों के षुद्ध होने की बात बतायी गयी है।

नाड़ी शुद्धि के लक्षण : षरीर में हल्कापन का महसूस होना, जठराग्नि की तीव्र और षरीर का कृष हो जाना नाड़ी षुद्धि के लक्षण हैं।

घटावस्था :

ततो भवेद्घटावस्था पवनाभ्यासतत्परा। प्राणोऽपानो मनोबुद्धिर्जीवात्मपरमात्मनोः।
अन्योन्यस्याविरोधेन एकता घटते यदा। घटावस्थेति सा प्रोक्ता तच्चिह्नानि ब्रवीम्यहम्।।

योगतत्वोपनिषद् 65–66

अर्थात् वायु धारण अभ्यास के द्वारा घटा अवस्था की प्राप्ति सहज रूप से हो जाती है। जिस अभ्यास के द्वारा प्राण, अपान, मन, बुद्धि, जीव तथा परमात्मा में जो पारस्परिक निर्विरोध एकता स्थापित हो, उसे घटा अवस्था कहते हैं।

घटावस्था प्राप्ति के बाद योगी को पूर्व अभ्यास अर्थात् पहले जितना अभ्यास करता था उसका चतुर्थ भाग ही करना चाहिए। दिन अथवा रात्रि में मात्र एक पहर ही केवल कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। अब उतनी मात्रा में अभ्यास की अवष्यकता नहीं रह जाती है।

5. **प्रत्याहार** : प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए कहा गया हैः

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरणं स्फुटम्। योगतत्वोपनिषद् 65–66

अर्थात् कुंभक में स्थिर होकर इंद्रियों को उनके विषय से खींच कर लाना ही प्रत्याहार है । उस समय योगी जो कुछ चक्षुओं से दृश्यवत करें उन चीजों को आत्मवत समझें।

अर्थात प्रत्याहार के अभ्यास में इंद्रिय जनित समस्त ज्ञान को आत्मसात समझने का प्रयत्न करें। इस अभ्यास से धीरे–धीरे योगी की चित्त शक्ति बढ़ती जाती है। जैसे–जैसे चित्त शक्ति बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे उसे दूर श्रवण, दूरदर्शन, क्षणभर में सुदूर क्षेत्र में आ जाना, वाणी सिद्धि, मनचाहा रूप धारण कर लेना, अदृश्य हो जाना, मल–मूत्र के स्पर्श से लोहे का स्वर्ण बन जाना, आकाश मार्ग में गमन की शक्ति आदि।

उपरोक्त सिद्धियां योग मार्ग के विघ्न हैं। साधक को इन सिद्धियों से बचना चाहिए। सिद्धियों को कभी भी किसी के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए। बल्कि योगी को जन सामान्य की समझ में अज्ञानी, मूर्ख एवं बाधिर की भांति रहकर अपनी सामर्थ्य को छुपा कर रखना चाहिए।

6. धारणा और परिचयावस्था :

एवं भवेद्घटावस्था संततााभ्यासयोगतः। अनभ्यासवतष्चैव वृथागोष्ठया न सिद्धयति।।
तस्मयत्सर्वप्रयत्नेन योगमेव सदाभ्सेत्। ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः।।
वायुः परिचितो यत्नादग्निा सह कुण्डलीम्। भावयित्वा सुषुम्नायां प्रविषेदनिरोधतः।।

योगतत्वोपनिषद् 65–66

अर्थात् इस प्रकार नियमित योगाभ्यास से घटावस्था की प्राप्ति होती हैं, परन्तु इस प्रकार की सिद्धि अभ्यास से ही सम्भव है, मात्र बातों से नहीं। घटावस्था के आगे निरंतर अभ्यास से परिचय अवस्था की प्राप्ति होती है। परिचय अवस्था के लिए योगी को प्रयत्न पूर्वक वायु से प्रदीप्त अग्नि सहित कुंडलिनी की साधना के द्वारा जागृत करके भावना पूर्वक सुषुम्ना में अवरोध रहित प्रवेश कराना चाहिए। योगी का चित्त वायु रहित सुषुम्ना में प्रवेश हो जाने से उसकी पृथ्वी आदि पंचमहाभूत रूपी देवों में पांच प्रकार की धारणा हो जाती है।

7. ध्यानः

सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्। निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिष्च ततो भवेत्।।

योगतत्वोपनिषद् 105।

अर्थात् योगतत्वोपनिषद् में ध्यान के दो भेद सगुण और निर्गुण माने गये हैं। इस उपनिषद् के अनुसार सगुण ध्यान का फल अणिमादि सिद्धियाँ और निर्गुण ध्यान से समाधि की प्राप्ति होती है।

8. समाधिः

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः। यदि स्वदेहमुत्स्त्रष्टुमिच्छा चेदुत्सृजेत्स्वयम्।।

योगतत्वोपनिषद् 105।

अर्थात् जिस अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा की अवस्था समान हो जाती है, उसे समाधि कहते हैं। इस अवस्था अर्थात् समाधि में योगी यदि अपने शरीर का परित्याग करना चाहे, तो वह अपने शरीर कर परित्याग भी कर सकता है।

इस प्रकार योगी अपने आपको परब्रह्म में विलीन कर लेने के उपरान्त उसे फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता है। यदि किसी योगी को अपना षरीर प्रिय लगता है, तो वह अपने षरीर में रहते हुए अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर सभी लोकों में गमन करता है। वह चाहे ता देवता होकर स्वर्ग में भी रह सकता है। योगी अपनी ईच्छानुसार मनुष्य या यक्ष आदि का भी रूप क्षणभर में धारण कर सकता है। वह सिंह, हाथी, घोड़ा आदि अनेक रूपों को भी अपनी ईच्छा से धारण कर सकता है।

4. **राजयोगः**

इस उपनिषद् में राजयोग को हठयोग का फल माना गया है। हठयोग के निरंतर अभ्यास से राजयोग की सिद्धि हो जाती है। राजयोग की सिद्धि हो जाने पर हठयोग की शरीर सम्बंधी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती है। राजयोग की प्राप्ति से उसे निश्चितरूप से वैराग्य एवं विवेक की स्वभाविक प्राप्ति हो जाती है।

आहारः

नमक, तेल, खटाई, गर्म, रूखा, तीक्ष्ण भोजन, हरे साग, हींग आदि मसाले, आग से तापना, स्त्री प्रसंग, अधिक चलना, प्रातः काल का स्नान, उपवास तथा शरीर को कष्ट पहुंचाने वाले कार्यों का परित्याग कर देना चाहिए।

अभ्यास के प्रारंभिक काल में दुग्ध, घृत आदि सर्वश्रेष्ठ भोजन है। गेहूं, चावल, मूंग का आहार योग में सहायता प्रदान करने वाला है।

योग सिद्धि के प्रारंभिक लक्षणः

भूमि से ऊपर उठना, मल और मूत्र का अति अल्प हो जाना, निद्रा का घट जाना, कीचड़ नाक, थूक, पसीना, मुख की दुर्गंध आदि का अभाव हो जाना आदि योग सिद्धि के प्रारंभिक लक्षण है। अभ्यास की उत्तरोत्तर वृद्धि से शक्ति का आ जाना, भूचर सिद्ध हो जाने से भूचरों पर विजय प्राप्त हो जाती है। व्याघ्र, हाथी, नीलगाय, सिंह आदि को योगी हाथ से मार कर उन्हें मृत्यु को प्रदान करा सकता है। योगी का स्वरूप कामदेव के सदृश्य सुंदर हो जाता है। ऐसे योगी को देखकर अनेकों स्त्रियां उससे भोग कराने की इच्छा करने लगती हैं।

सावधानियाँः

योगतत्वोपनिषद् योगसाधकों को निम्न सावधानियों का परामर्श दिया गया है–

1. अभ्यास के प्रारम्भिक काल में आलस्य, अपनी बड़ाई, धूर्तपने की बातें आदि विघ्न उपस्थित होते हैं। साधक को इन विघ्नों से सावधान रहना चाहिए।
2. श्रेष्ठ और बुद्धिमान साधक को धात (धन), स्त्री, लौल्यता (चंचलता), आदि को मृगतृष्णा और विघ्न रूप मानकर इनका परित्याग कर देना चाहिए।
3. योग सिद्धि के लक्षण आने पर उनका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, बल्कि स्वयं ही देखकर अपना खुद उत्साह वर्धन करना चाहिए।
4. योग सिद्धि के परिणाम स्वरूप योगी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। ऐसे योगी को अवलोकित करने के पश्चात अनेकों स्त्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट होकर उससे भोग की ईच्छा करने लगती है। ऐसे में योगी को उनकी ईच्छी की पूर्ति कदापि नहीं करनी चाहिए वरन् स्त्रियों का चिन्तन न करते हुए दृढ़ निश्चयी होकर निरंतर अभ्यासरत् रहना चाहिए।

5. विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से साधक की जठराग्नि बढ़ जाती है, जिसके कारण योगी में अधिक भोजन पचा सकने की सामर्थ्य हो जाती है। ऐसी अवस्था में योगी को कम आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए अन्यथा उसकी जठराग्नि से उसका शरीर नष्ट होने लगेगा।

6. ध्यानबिन्दु उपनिषद्

इस उपनिषद के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

1. ध्यानयोग का महत्व।
2. प्रणव का स्वरूप।
3. प्रणव ध्यान की विधि।
4. योग के छः अंग।
5. नादानुसंधान द्वारा आत्म दर्शन।

1. **ध्यानयोग का महत्वः** जैसा कि इस उपनिषद का नाम ही ध्यान बिंदु उपनिषद् है। अतः इस उपनिषद् का केंद्रीय भाव ध्यान है। इस ध्यानयोग के महत्व को बताते हुए कहा गया हैः

यदि षैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्। भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 1

अर्थात् शैल पर्वत के समान अनेकों जन्म जन्मांतर और अनेक योजन में व्यापक पाप समूह को भी ध्यान योग द्वारा नष्ट किया जा सकता है, जो अन्य किसी साधन से संभव नहीं है। इस प्रकार ध्यानयोग की साधना से कैसे भी और कितने भी पापों को नष्ट किया जा सकता है।

2. **प्रणव का स्वरूप :**

बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्। सशब्दं चाक्षरे क्षीणं निःशब्दं परमं पदम्।।
अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत्परम्। तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 2–3

अर्थात् बीजाक्षर या ओंकार प्रणव से परे बिन्दु स्थित है और उस बिन्दु पर नाद की स्थिति है। इस नाद से मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ती है। नाद ध्वनि के अक्षर में विलय हो जाने पर जो शब्द से रहित जो स्थिति होती है, वही **परमपद** है। जो योगी उस अनाहत तत्व का जो परम कारण तत्व के परे परम कारण स्वरूप उसे प्राप्त करलेता है, उस योगी के सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्म की सत्ता की सूक्ष्मता का वर्णन करते हुए इस उपनिषद् में कहा गया है कि यदि बाल अर्थात गेहूं की बाली के अग्रभाग के एक लाख भाग किये जाय तो उसका 1 भाग जीव कहलाएगा। जब उसके अर्थात् जीव के भी एक लाख भाग किये जाये तो उसका लाखवें भाग को ईश्वर समझना